मध्यकालीन मारु-गुर्जर चित्रकलाके प्राचीन प्रमाण

डॉ० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह

मध्यकालीन पश्चिमभारतीय चित्रकला हमें लघु-चित्र (miriature paintings) रूपमें, विशेषतः हस्तलिखित जैन ग्रन्थोंमें, मिलती है। उस कलाको पश्चिमभारतीय चित्रकला, अपभ्रंश शैली, गुजराती चित्रकला आदि नामोंसे भिन्न-भिन्न विद्वानोंने पेश की है। किन्तु, ज्यादा करके वह पश्चिमभारतीय चित्रकला नामसे पहचानी गई है। वह कला मुख्यतः राजस्थान और गुजरातके जैन भंडारोंमें और राजस्थान और गुजरातमें लिखी हुई प्रतियोंमें मिलती है इसलिए मैं उसको मध्यकालीन मारु-गुर्जर चित्रकला नामसे पहचानना पसंद करता हूँ। यह शब्द प्रयोग, जहाँ तक मुझे याद है, कवि श्री उमाशंकर जोशीने गुजराती और राजस्थानीका मूल स्रोतरूप भाषा, जिसको टेसिटोरीने Old Western Rajasthari कही है, उसके लिए प्रयुक्त किया था। वास्तवमें प्राचीन और मध्ययुगमें गुजरात राजस्थानका भाषाकीय. कलाविषयक और अन्य सांस्कृतिक ऐक्य रहा था। इसलिए भी मारु-गुर्जर शब्द प्रयोग ज्यादा वास्तविक लगता है।

इस चित्रशैलीके विषयमें बहुत लिखा गया है। डॉ० कुमार स्वामी, डॉ० ब्राउन, डॉ० मजमुंदार, श्री०ओ०सी० गांगुली, डॉ० मोतीचन्द्र, डॉ० बॅरेट, डॉ० सिलग्रे, श्रीकार्ल खंडालावाला आदि विद्वानोंके संशोधन आदिके परिणामरूप यह बात स्पष्ट हुई थी कि इस शैलीके जो उपलब्ध लघुचित्र हैं उनमेंसे सबसे प्राचीन है संवत् ११५७ (ई०स० ११००) में भृगुकच्छमें लिखित विशीथचूर्णिकी ताडपत्रीय प्रति[1] जिसमें पत्रोंके बीचमें कमलआदिके सुशोभन हैं। एक दो गोलाकृति सुशोभनोंके बीचमें पशु (हाथी), नरनारी आदि भी हैं। किन्तु, ई०स० ११२७ वि०सं० ११८४ में लिखित ज्ञाता और दूसरे अंगसूत्रोंकी ताडपत्रीय प्रति (खंभात के शान्तिनाथ जैन भंडारमें सुरक्षित) में दो चित्र मिले हैं जिनसे इस कलाका विशेष परिचय होता है। इसमें प्रथम चित्र तीर्थंकर भगवान्का है[2] और दूसरा सरस्वती या श्रुतदेवता[3]का।

करीब इसी समयके भित्तिचित्र उत्तरप्रदेशके ललितपुर जिलेके मदनपुरमें विष्णुमंदिरके मंडपमें मिले हैं। वह मंदिर मदन वर्माके राज्यकालमें ई०स० ११३० से ११६५ के बीच बना। चित्र भी करीब इसी समयके आसपास बने होंगे। इन चित्रोंमें पंचतंत्रकी कथाके चित्र हैं।[4] चित्रोंमें यही मारु-गुर्जर चित्रकलाकी विशेषतायें उपलब्ध होती हैं।

इलोराकी कैलासमन्दिरगुहाके भित्तिचित्रोंमें मध्यके स्तरमें गरुडोपरिस्थित विष्णुके चित्रमें लम्बा नोक-

---

१. देखो, मोतीचन्द्र, जैन मिनिएचर पेइन्टीन्गझ् फ्रॉम वेस्टर्न इन्डिया, (अमदाबाद, १९४९), पृ० २८-२९, चित्र नं० १४।

२. वही, चित्र नं० १५।

३. वही, चित्र नं० १६, पृ० २८।

४. स्टेला क्रामरिश, ए पेइन्टेड सीलिंग, जर्नल ऑफ ये इण्डीअन सोसायटी ऑफ ओरिएन्टल आर्ट, वॉल्युम, ७, पृ० १७६ और चित्रप्लेट।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दार (Penrfed) नाक आदि विशेषतायें स्पष्ट रूपसे विकसित हैं।[1] अतः ई०स० ८वीं सदी और ११वीं सदीके बीच इस चित्रशैलीका प्रादुर्भाव हो चुका था यह निश्चित है। किन्तु, ग्रन्थस्थ चित्रकलाके इतने प्राचीन अन्य प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

इस शैलीके अन्य प्राचीन प्रमाण, खासतौर पर जिसका समय निश्चित है ऐसे प्रमाणकी खोजमें डॉ० मंजूलाल मजमूंदारने एक नयी दिशाकी ओर हमारी दृष्टि खींची है। प्राचीन ताम्रपत्रीय दानपत्रों-राज्यशासनोंमें अन्तमें कभी-कभी दान देनेवाले राजाकी राजमुद्राका चिह्न रेखाकृतिमें उत्कीर्ण रूपसे मिलता है। ऐसे उदाहरणोंमें हमें रंगमिलावट और चित्राकृति वैविध्य नहीं मिलता, किन्तु रेखांकनकी परिपाटी, उस शैलीकी रेखांकन विशेषताका प्रमाण मिल जाता है। मारुगुर्जर शैलीकी जो विशेषतायें हैं उनमें नोकदार नाक, अर्द्धसन्मुख मुखाकृतिमें दूसरी आँखको भी दिखाना (farhor eye extended in space) और मुखकी और शरीरकी आकृतिमें विशेषतः कोणांकन (angularitces) दिखलाना, आदि हमें ऐसे ताम्रपत्रोंके रेखांकनोंमें दृष्टिगोचर हो सकते हैं। इस तरह डॉ० मजमूंदारने दो प्राचीन शासनोंकी ओर निर्देश किया है,[2] जिनमें एक है परमार राजा वाक्पतिराजका संवत् १०३१ = ई०स० ९७४ में उत्कीर्ण दान शासन जो उज्जयनी नगरीसे दिया गया है और दूसरा है परमार भोजराजका शासन जो संवत् १०७८ = ई०स० १०२१ में धारा नगरीसे दिया गया है जिसमें नागह्रदको पश्चिम पथकमें वीराणक गाँव दानमें दिया है। इन दोनोंमें परमारोंकी राजमुद्राका चिह्न गरुडाकृति उत्कीर्ण है, और गरुडके हाथमें सर्प है। गरुडको वेगसे आकाशमें विचरता हुआ, मनुष्याकृति और सपक्ष दिखाया है। यहाँ यह दोनों आकृति चित्र १ और चित्र २ में पेश की हैं।

इन चित्रोंसे यह स्पष्ट है कि यह चित्रकला दशवीं सदीके उत्तरार्द्धमें मालव प्रदेश और परमारोंके आधीन प्रदेशमें प्रचलित हो चुकी थी।

इस दृष्टिसे मैंने उत्कीर्ण दानपत्रोंकी ओर खोज करनेका प्रयत्न किया जिनमें ऐसे राजचिह्न उत्कीर्ण किये हों। इससे अब हम निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि ई०स० ९४८ में (अतः दशवीं शताब्दीके मध्यकालमें) इस शैलीका आविष्कार और प्रचार हो चुका था। संभवतः दशवीं शताब्दीके सारे पूर्वार्द्धमें इस शैलीका होना माना जा सकता है क्योंकि राजमुद्रामें इसका आविष्कार होना तब ही हो सकता है जब उसको कलाकारों और कलापरीक्षकोंने अपनाया हो। साबारकांठा जिला (उत्तर गुजरात) हरसोला नामक प्राचीन नगरके किसी ब्राह्मणके पाससे मिला हुआ यह शासन हरसोला प्लेट्स ऑफ सीयक इस नामसे रायबहादुर के०एन० दीक्षितजीने और श्री०डी०बी० डीसकालकरने प्रसिद्ध किया था,[3] वह शासन सीयकने महीनदीके तट पर अपने कॅम्पमेंसे निकाला था और दानमें इसी प्रदेशमें मोहडवासक (हालका मोडासा) के पासके गाँव दिये गये हैं। इस शासनमें उत्कीर्ण गरुडाकृति मालव या गुजरातके किसी कांस्यकारने

---

१. मोतीचन्द्र, वही, पृ० ११–१२ और चित्र नं० ४।

२. डॉ० एम०आर० मजमुंदार, गुजरात–इट्स आर्ट-हॅरिटेइज, प्लेट १ और प्लेट १३। इन दोनों दानपत्रकी मूलप्रसिद्धिके लिए देखो, एन०जे० कीर्तने, श्रीमालव इन्स्क्रीप्शन्स, इन्डीअन एन्टीक्वेरी, वॉ० ६, पृ० ४९–५४ और प्लेटस्, यहाँ पर दिए हुए चित्र नं० १–२ इसी चित्रोंकी कॉपीसे साभार उद्धृत हैं।

३. देखो, के०एन० दीक्षित और डी०बी० डीसकालकर, दुहरसोला प्लेट्स ऑफ परमार सीयक, एपिग्राफिया इन्डिका, जिल्द १९, पृ० २३६ से आगे, और प्लेट।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कीर्ण की होगी क्योंकि मालवके राजाने यह शासन गुजरातमें अपने कैम्पमेंसे निकाला था। अतः इस शासनमें दिखाई देती गरुडाकृतिकी कला गुजरात और मालवा दोनोंमें प्रचलित होनेका सम्भव है। यह आकृति यहाँ चित्र ३ रूपसे पेश की है।

चित्र ३ की गरुडाकृति पूरी एकचश्म नहीं है। सवाचश्म जैसी लगती है और परली आँख ही दिखाई देती है। गाल (cheek) नहीं किन्तु उसकी और मुखकी सीमारेखासे ऐसी बाहर वह परली आँख नहीं है जितनी पिछले समयके मारु-गुर्जर चित्रोंमें मिलती है। अतः हम यह कह सकते हैं कि ई०स० ९४८ के आसपास मुखकी सीमारेखाके बाहर परली आँख लाना अगर शुरू भी हुआ हो, तो फिर भी इतना प्रचलित, इतना सर्वमान्य नहीं हुआ था।

वास्तवमें जहाँ तक परली आँखको सीमारेखासे बाहर दिखाने की बात है वहाँ तक तो चित्र १ में बताया हुआ ई०स० ९७४ में खुदा हुआ गरुड और चित्र ३ के गरुडमें कोई ज्यादा भेद नहीं है। किन्तु शरीर रचना और मुखाकृति आदिमें सविशेष भेद है। चित्र ३ वाले गरुड की बालक जैसी आकृति मनोज्ञ है, सजीव तो है ही। चित्र १ के गरुडकी आकृतिमें angularites बढ़ गई है, नाक ज्यादा लम्बा और तीक्ष्ण अन्त (Printed end) वाला है।

चित्र ४ में पेश किया हुआ ताम्रपत्र वि०सं० १०२६ = ९६९ ई०स० में परमार सीयक द्वारा दिया हुआ दानपत्रका है।[1] इस आकृतिके मिलनेसे स्पष्ट हो गया है कि ई०स० ९६९–९७० में परली आँखको मुखरेखासे बाहर दिखाना शुरू हो गया था, प्रचलित भी हो गया था और राजमुद्रामें भी यह शैली स्वीकृत हो गई थी। अतः इस शैलीका आविष्कार ई०स० ९५० और ९७० के बीचमें होकर इसका सर्वमान्य स्वीकार प्रचार हो चुका था ऐसा माननेमें हमें कोई बाधा नहीं है। इस दानपत्रका यह पत्र अभी अहमदाबादके श्रीलालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्यालयमें संगृहीत है।

इसी शैलीका प्रचार और विकास हमें एक और दानपत्रमें मिला है। वह है भोजदेवका बाँसवाडाका दानपत्र जो वि०सं० १०७६ – ई०स० १०१९–२० में दिया गया।[2] वह पत्रकी गरुडमुद्राको चित्र नं० ५ में यहाँ पेश किया है।

एक और दानपत्रमें भी इस मारु-गुर्जर शैलीकी गरुडाकृति मिली है। वह है भोपालसे मिला हुआ महाकुमार हरिश्चन्द्रका दानपत्र जिसके सम्पादक डॉ० एन० पी० चक्रवर्तीने उसको करीब ई०स० ११५७ में दिया गया माना है।[3] इसका समय ज्ञातांगकी ताड़पत्रीय प्रतिमें चित्रित सरस्वतीका समय जैसा होता है। आकृति यहाँ पर चित्र ६ में पेश की हैं।

---

१. डी०बी० डीसकलकर, एन ऑड़ प्लेट ऑफ परमार सीयक, एपि० इन्डि०, जिल्द १९, पृ० १७७ से आगे और प्लेट।

२. प्रो० इ० हुलूटझ्, बाँसवारा प्लेट्स् ऑफ भोजदेव, एपि० इन्डि०, वॉ० ११, पृ० १०१ से आगे और प्लेट।

३. एन०पी० चक्रवर्ती, भोपाल प्लेट्स् ऑफ महाकुमार हरिचन्द्रदेव, एपि० इन्डि०, वॉ० २४, पृ० २२५ से आगे और प्लेट्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उमाकान्त शाहने अपने बनारस ओरिअन्टल कॉन्फ्रेन्सके कलाविभागके अध्यक्ष पदके व्याख्यानमें कुछ वर्ष पहले जैसलमेरकी वि०सं० १११७ में लिखी हुई ओघनिर्युक्तिकी ताड़पत्रीय प्रतिके चित्रोंको पेश करके बताया था कि इन चित्रोंकी शैली वह मारु-गुर्जर (जैन, वेस्टर्न इन्डीअन, राजस्थानी, अपभ्रंश, गुजराती आदि नामोंसे पुकारी जाती) शैली नहीं है और वह शैली गुर्जर-प्रतिहारोंके समयमें सारे पश्चिम भारतमें जो प्रचलित शैली थी उसका आखिरी स्वरूप है।[1] यह बात इन चित्रोंसे स्पष्ट हो जाती है। क्योंकि, उस जैसलमेरके ओघनिर्युक्तिके चित्रोंकी शैली और चित्र १ से ६ की शैली स्पष्ट रूपसे भिन्न है।

●

१. देखो, उमाकान्त शाह, प्रोग्रेस ऑफ स्टडिझ् इन फाइन आर्ट्स एन्ड टेक्निकल साइन्सीझ, जर्नल ऑफ दि ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, वॉ० १८, अंक १–२ का परिशिष्ट, पृ० १-३६, विशेषतः पृ० १९, और प्लेट्स्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

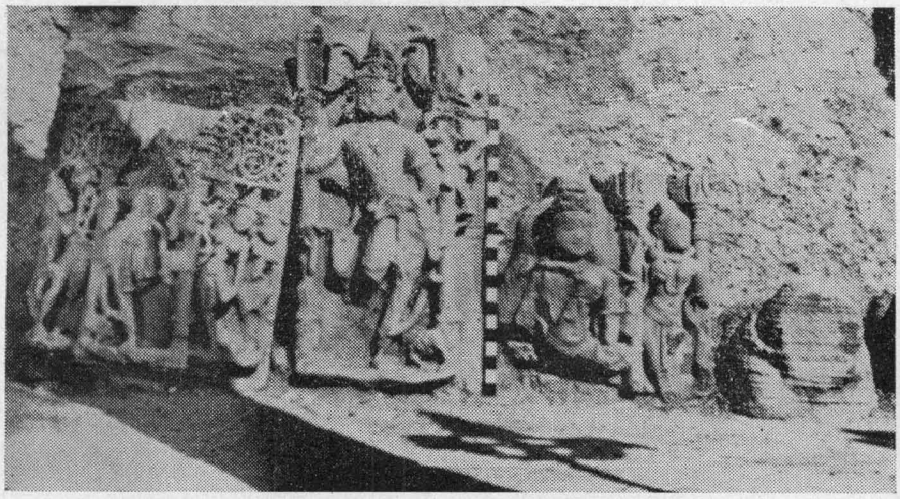

१. पल्लू ब्रह्माणी मन्दिर के उत्तर-पश्चिम स्थित शिल्प

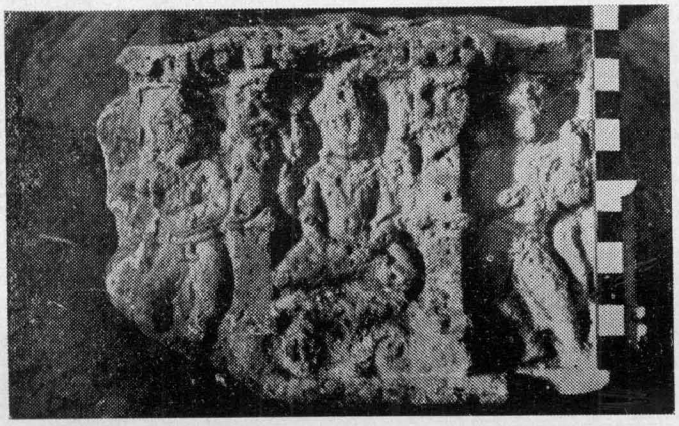

२. पल्लू गाँव में स्थित प्राचीन शिल्प

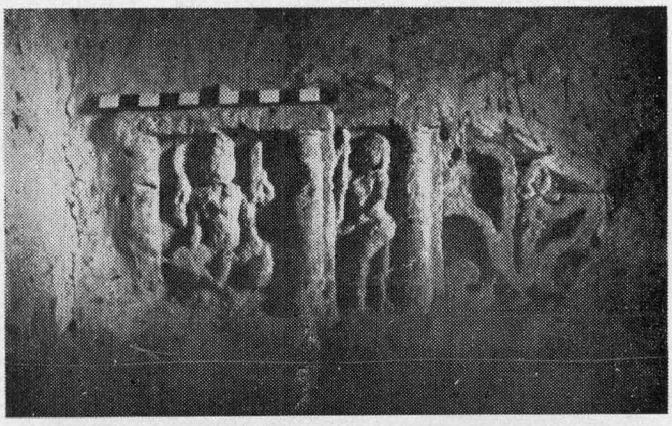

३. पल्लू गाँव के घर की दीवाल में बना प्राचीन शिल्प

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

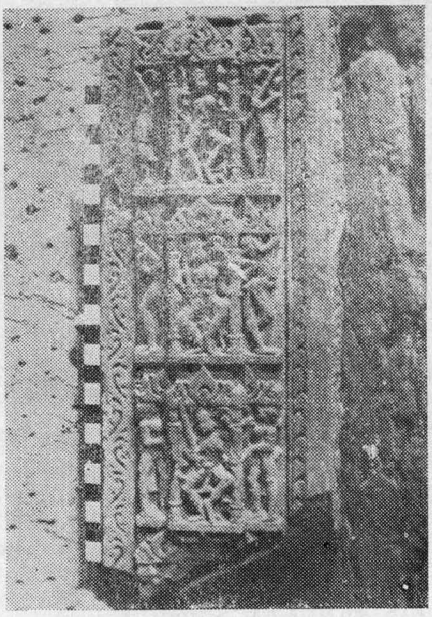

४. विभिन्न मुद्रा में दुर्गा (?) की ३ मूर्तियाँ परिचारिका युक्त (पल्लू) शिल्प का १ हिस्सा

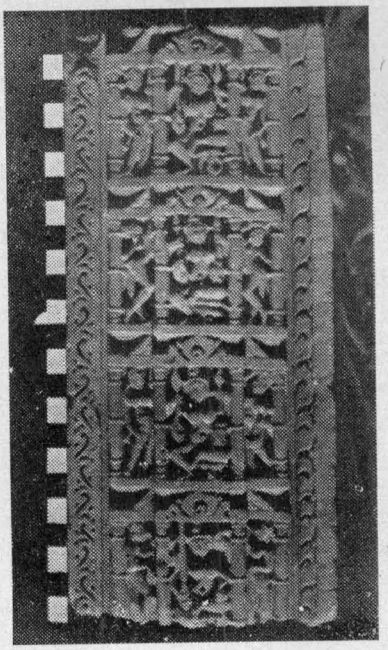

५. नोहर (गंगानगर) ध्यानमुद्रा स्थित लक्ष्मी व नृत्यमुद्रा युक्त

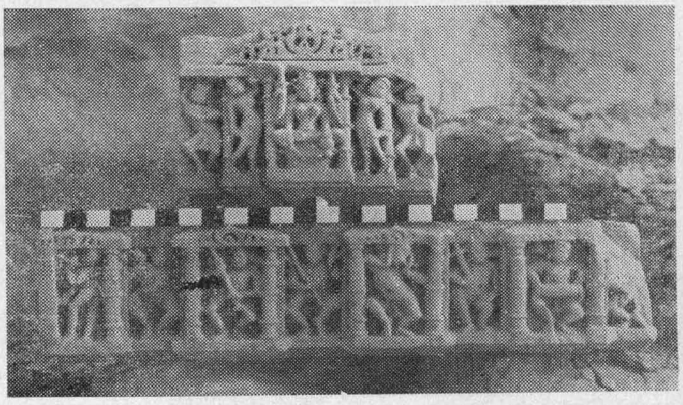

६. पल्लू १. स्तम्भ छतरी में लक्ष्मी अलंकृत (परिचारिकायुक्त उभय पक्ष में) २ नृत्य-गीत रत नर नारी समूह

७. पल्लू—धनुर्धर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. पल्लू—दाता या द्वारपाल

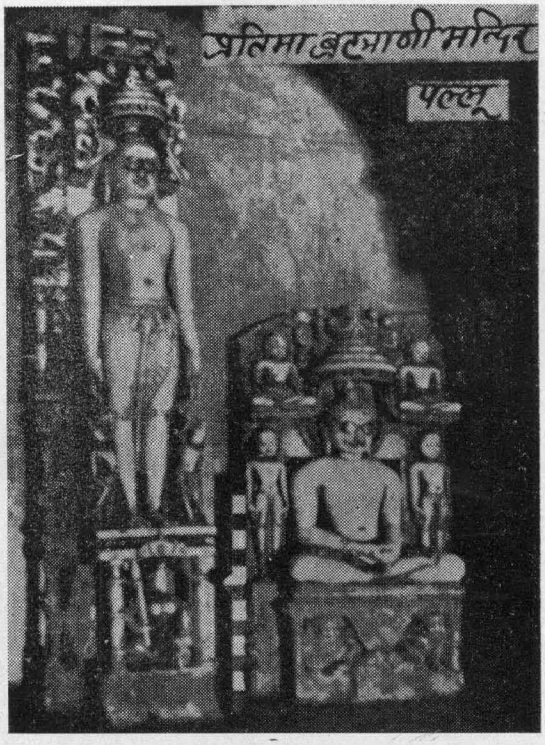

९. ब्रह्माणी माता के मन्दिर स्थित श्वे० जैन प्रतिमाएँ
१ पद्मासन १ खड्गासन

१०. पल्लू—स्तम्भ-तोरणयुक्त प्राचीन शिल्प

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org